धर्मयुग नंदन,पराग कादंबिनी साप्ताहिक हिंदुस्तान के वो यादगार दिन

“आनंद कुमारस्वामी!” एक दिन ट्विटर पर एक दोस्त ने कहा, “तुमने उनके बारे में नहीं सुना? उन्हें अवश्य और तत्काल पढ़ो! ‘शिव का नृत्य’ उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है।”

अगले कुछ दिन मैं पाँच साल में पहली बार घर वापस जाने की तैयारी में व्यस्त हो गई। होली का समय था। माँ के बगीचे में बोगनविलिया पूरी तरह से खिल गया था। नींबू के फूलों की मोमी, सुगंधित, हाथीदांत-सफेद पंखुड़ियाँ मधुमक्खियों से पटी पड़ी थीं। उत्तरी भारतीय बसंत पूरे यौवन पर था। ओस से भींगी मिट्टी से फल, फूल, और नाना प्रकार के जीव प्राण खींच रहे थे।

एक सुबह मैं सीढ़ियाँ चढ़ कर घर की छोटी सी दुछत्ती पर जा पहुँची। लंगड़ाते, जर्जर किवाड़ को धक्का दे कर खोला तो पुरानी किताबों की गंध ने मुझे झकझोर दिया। बाबा की सारी किताबें यहाँ भरी थीं। पहले मैं लकड़ी के ट्रंक तक पहुँची और घुटनों के बल बैठ कर उसका ढक्कन उठाया ही था कि पुरानी हिंदी पत्रिकाओं का ढेर मेरी गोद में आ गिरा।

स्वतंत्रता के बाद पहले कुछ दशकों में इस नए-नवेले राष्ट्र में साहित्यिक गतिविधियाँ पूरे उफान पर थीं। पूरे देश-भर में लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को पंख लग गए थे। कवि, लेखक और कलाकार इन आशाओं को कलात्मकता से व्यक्त कर रहे थे। आज के अभिनेताओं की तरह प्रशंसकों की भीड़ के उनके सामने खड़ी होती थी।

उनके अधिकांश लेख पत्रिकाओं में पाए गए। साठ से नब्बे के दशकों तक ये पत्रिकाएँ, विशेष रूप से हिंदी में, हर जगह आसानी से उपलब्ध थीं।

अपने नाई के सलून में आप ‘मायापुरी’ नामक टैब्लॉयड में फ़िल्मी पार्टियों की तस्वीरें देख सकते थे। केवल मुखपृष्ठ रंगीन होने से भी आपकी दिलचस्पी में कोई कमी नहीं होती थी। छोटे शहरों में सिविल सर्विस के प्रत्याशियों के लिए स्थानीय बुक स्टॉल में ‘प्रतियोगिता दर्पण’ के अंकों की मालाएं सजी रहती थीं। अपने दंत चिकित्सक के क्लिनिक में प्रतीक्षारत लोगों के मनोरंजन के लिए रखे ‘रीडर्ज़ डायजेस्ट’ के हिंदी संस्करण ‘सर्वोत्तम’ में मैंने सबसे पहले दासविदान्या शब्द पढ़ा, जिसे साहूकार के मुँह पर फेंक कर कर्ज़ में डूबे किसान ने पहाड़ से छलांग लगा दी थी।

मैंने जल्दी पढ़ना शुरू कर दिया था। अपने से बड़ी एक सहेली के यहाँ मुझे उसकी पुरानी 'पराग' पत्रिका मिली जिसमें बाबू देवकी नंदन खत्री की चंद्रकांता को धारावाहिक के तौर पर छापा गया था ... ऐयार चिठ्ठी लिखते, जादू-करिश्मे करते, रेशमी रुमालों को आकाशगांगेय बटोहियों के तौलिये की तरह काम में लाते हुए उस सदी के पाठकों के दिलों की धड़कन बन बैठे थे, और अब मेरी भी। गर्मियों की छुट्टियों में 'मधु मुस्कान' और 'लोटपोट' का तेज़ी से व्यापार होता था। पटकथा और हस्तकला में डायमंड कॉमिक्स से अधिक निपुण न होते हुए भी इनकी हँसी महँगी न होती थी।

सबसे बढ़िया बात ये थी कि लगभग ये सब कुछ हमारे घर में आपको मिल जाता।

मेरे बाबा किताबों के उत्साही संग्रहकर्ता थे। उनके कॉलिज के दिनों की कई पत्रिकाएँ विवाहोपरांत भी घर में आती रहीं। मेरे छोटे भाई के लिए 'चंपक' थी, मेरे लिए 'पराग' और 'नंदन', जिसके यात्रा-संस्मरणों में मैंने पहली बार एक जादुई शहर बैंगलोर का नाम पढ़ा था। 'फ़ेमिना' माँ के लिए और घर-बाहर के सभी लोगों के लिए 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'सर्वोत्तम', 'कादम्बिनी' और 'नवनीत' मँगाए जाते थे।

एक अंग्रेज़ी समाचार पत्र भी आता था, संग दैनिक जागरण जिसके स्थानीय पृष्ठों से रस निचोड़ कर मेरी दादी अपने सत्संगी गिरोह के साथ बाँटती थीं। हर बार दौरे से लौटते हुए बाबा 'माया' नामक एक रसहीन पत्रिका घर लाते थे, जिसे अब मैं राजनीति के गहन विश्लेषण के रूप में समझती हूँ। हालाँकि मेरे बाल मन के हिसाब से सबसे उबाऊ पत्रिका 'इंडिया टुडे' थी। जब 'आउटलुक' प्रकाशित हुई तो वो भी घर आई जिसका गॉसिप, तानाकशी और चापलूसी का अनूठा संगम बस मिसाल ही समझिए।

महान कार्टूनिस्ट सुधीर धर के तीखी नाक वाले तीव्र कश्मीरी जोड़े 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के अंतिम पन्नों की शोभा बढ़ाते थे। वहीँ आज के पर्यावरण-योद्धा और तब के रेखाकार आबिद सुरती ढब्बू जी और छोटू-लंबू को 'धर्मयुग' में प्रस्तुत करते थे। नामी कार्टूनिस्ट प्राण, डायमंड कॉमिक्स के इतर, चतुर गृहिणियों, चंचल बच्चों और परम बुद्धिमान चाचा चौधरी के करिश्माई जाल कई पत्रिकाओं में बुनते थे। 'इंद्रजाल' कॉमिक्स में भूले बिसरे पश्चिमी महानायक और देसी जाँबाज़ हाथ मिलाते थे पर जैसे-जैसे मैं बड़ी होती गई, सुपर कमांडो ध्रुव और नागराज ने पड़ोस के घरेलू पुस्तकालय कम बुक स्टाल पर क़ब्ज़ा जमा लिया।

इनकी उत्कृष्ट सम्पादकीय और लेखकीय प्रतिभा इन पत्रिकाओं की सबसे शानदार विशेषता थी। 'पराग' का संपादन कर रहे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का मानना था कि बच्चों और किशोरों का समृद्ध साहित्य पर पहला अधिकार है। उधर सशक्त महिला लेखिकाओं की एक पूरी नई पीढ़ी ने इन पन्नों पर अपने दिल की बात रखी। बदलते सामाजिक – सांस्कृतिक परिवेश, स्त्री-पुरुष संबंध जैसे गूढ़ विषयों पर मृदुला गर्ग, ममता कालिया और मन्नू भंडारी जैसी कुशल महिलाओं ने सहजता से लिखा। हमारी माँओं ने इन लेखिकाओं को तब पढ़ा जब शिक्षित स्त्रियों के लिए रोज़गार के अवसर कम थे, कॉलिज के रोमांस अधूरे रह जाते थे और असमान विवाह आम बात थी।

केपी सक्सेना के व्यंग्य से लेकर डॉ. सरोजिनी प्रीतम की चुहल तक, भगवती चरण वर्मा और जैनेंद्र के गंभीर चिंतन से लेकर शिवानी के रसीले प्रसंगों तक, सभी ने नित नए लेखक – लेखिकाओं की खेप की

खेप तैयार की। अभयारण्य में अकेले जूझते वन अधिकारियों का 'कादम्बिनी' में अपना दखल था। पास के आदिवासियों और जनजातियों संग महुआ पीते, टेसु के फूलों की होली खेलते, सुंदरियों के मोह पाश से बचते-बचाते, क्या अफ़सर क्या कबायली, भ्रष्ट और लालची ताकतों से भिड़ भी जाते थे। 'सरिता' और 'गृहशोभा' जैसी घरेलू पत्रिकाओं के सांस्कृतिक स्तम्भ वो मील का पत्थर हैं जिसमें सकुचाती महिलाएँ शर्म से लाल होती थीं पर पूरा आनंद मौन पुरुष पाठकों को आता था।

समय हालाँकि कुछ और ही ठान रहा था। कैट-आय चश्मे, लंबे खिंचे काजल और बिना बाँहों के रेशमी ब्लाउज़ में सजी शीला झुनझुनवाला ने हिंदुस्तान टाइम्स समूह में कई प्रतिभाओं का करियर बनाया-बिगाड़ा, जबकि धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' में और 'हंस' में राजेंद्र यादव ने भी ऐसा ही किया। मृणाल पांडे ने उथले, बासी समाजवाद की पुनरावृत्ति में कई पत्रिकाओं की नैया डुबोई। साहित्यिक दुनिया पर इनकी पकड़ धीरे-धीरे ढलती चली गई और टीवी के निजीकरण, फिर इंटरनेट और सस्ते मनोरंजन की उपलब्धता से पत्र – पत्रिकाओं की प्रतिष्ठा को लकवा मार गया।

दुछत्ती में मैंने 'कादम्बिनी' और 'नवनीत' के भुरभुरा रहे कुछ अंकों को उठाया। 'नवनीत' के साहित्य, संस्कृति, यात्रा, दर्शन और हास्य के आसान मिश्रण को मेरी जैसी बच्ची बर्दाश्त कर सकती थी पर 'कादम्बिनी' कुछ और ही जंतु थी। ज्योतिष और जटिल कलाओं के अपने वार्षिक *तंत्र मंत्र विशेषांक* के लिए प्रसिद्ध, इस पत्रिका के 1989 के अंक पर दृष्टि फेरी तो कश्मीर, कॉर्नियल सर्जरी, जॉन कोजैक, वेद, प्रसिद्ध क्षेत्रीय कृतियों के अनुवाद, और ज्योतिषी चेतावनी, सब दिखाई पड़े!

मैं पत्रिकाओं को नीचे लाई, उनकी धूल मिटाई और लॉन में ठीक उसी जगह बैठ गई जहाँ बाबा अपने हाथ से लेपेटी नेवी कट के साथ चाय की चुस्की लेते हुए दफ़्तर का काम निपटाते थे और जाड़ों की गुलाबी धूप में हमारा कुत्ता उनके चरणों में ऊँघता रहता था। अगर बाबा इस समय होते तो अपनी बच्ची के बारे में बहुत कम समझ पाते। उसका काम और उसके जीवन के अनुभव, सब उनके लिए अकल्पनीय होते। केवल एक ही तार बाबा और मुझे उस पल उस लॉन में जोड़ पाता ...

मैंने एक मोटी 'कादंबिनी' उठाई, दीवाली का विशेष संस्करण जो बाबा ने अपनी माँ और बहन के साथ किसी सप्ताहांत में पढ़ा होगा। मैं पन्ने पलटती रही कि एक लेख ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। महान कलाकार और दार्शनिक आनंद कुमारस्वामी द्वारा लिखित *पूर्व का संदेश* पढ़ें, पन्ने पर छपे ब्लर्ब में दिखा!

मैंने एक गहरी साँस ली और फ़ोन उठाया। अप्रत्याशित और शहद जैसे मीठे संयोगों का असली रस जानकार मित्रों साथ तुरंत साझा करने में ही है।

लेखिका – लावण्य शिवशंकर (@TheSignOfFive)

साभार –https://mandli.in/ से